राम-दर्शन

स्वामी राम के उपदेशों का प्रचार होना ही चाहिये। वे न केवल भारत अपितु समूचे विश्व की महानतम विभूतियों में से एक थे।

मैं उनके आदर्शों का आदर करता हूँ।

—मो० क० गाँधी

सम्पादिका
"गुलाब"

प्रकाशक
श्रद्धांजलि प्रकाशन माला
श्री रामतीर्थ मिशन,
४/२२ ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली
(फ़ोन नं० ४००३७)

श्री रामतीर्थ अर्द्ध-शताब्दि
दीपावली संबत २०१३
२ नवंबर १९५६

मुद्रक
राकेश प्रेस
अज़ीज गंज दिल्ली
(फ़ोन नं० २५९३८)

दो शब्द

स्वामी राम को ब्रह्मलीन हुए इस दीपावली को पूरे ५० साल होते हैं इन्होंने ३३ वर्ष की आयु में बचपन में खेला, फिर जवानी में पढ़ा और समझा, साथही गृहस्थाश्रम का पालन किया—इसके बाद वेदान्त का सच्चा दर्शन कर और मुमुक्षु जन-समुदाय को उसका दर्शन कराकर देश-विदेश को चकित किया। उन्होंने इस छोटी-सी आयु में जितना काम किया उतना उनके जैसी दिव्य आत्माएँ ही कर सकती हैं।

उनके, जीवन का प्रत्येक क्षण हमारे लिए, प्रेरणात्मक है।

स्वामी राम ने भविष्य वाणी की थी कि भारत राजनैतिक दृष्टि से सारे विश्व में बीसवीं सदी के प्रथम अर्द्ध भाग के पूर्व ही अश्रुत-पूर्व स्थान प्राप्त कर लेगा। कितनी सत्य उतरी है वह भविष्य-वाणी ?

उनका पूरा का पूरा जीवन ही अनुकरणीय है। उनमें ज्ञान-पिपासा कैसी तीव्र थी, सादगी कैसी अनुकरणीय थी यह देखते ही बनता था, पुष्कर-राज्य में तो उनकी सम्पति रह गई थी केवल एक कोपीन, ओढ़ने का उत्तरीय, तथा बाँस की एक खोखली नली, जिसमें लिखने की सामग्री बन्द रहती थी।

स्वामी राम ने किससे क्या अपेक्षा रक्खी और किन-किन नियमों को पालन करने को कहा, वह इन शब्दों में निहित हैं—

"शिक्षार्थी, देश की बागडोर देश के बच्चों के हाथ होती है, उन्हें नैतिक शिक्षा, परिश्रम, राष्ट्रीयता, सब में एक सा प्रेम-भाव तथा सादा जीवन ये तुम्हारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। आजकी शिक्षा केवल ग्रेजूएट पैदा करती है। जो जीवन यापन के लिए नौकरी की तलाश

में दर-दर ठोकरे खाते फिरते हैं। फलस्वरूप कई आत्मा-हत्या करते रहते हैं।

इस छोटी-सी पुस्तक में स्वामी राम के दिव्य-जीवन की झाँकी देखने को मिलेगी।

"अर्द्ध शताब्दी"
राम-महानिर्वाण
संवत् २०६३



—गुलाब

पूजा चित्र की नहीं चरित्र की होनी चाहिये

दिल्ली में स्वामी रामतीर्थ मिशन का सत्संग प्रति रविवार को हुआ करता है। "रवि" शब्द का अर्थ है "सूर्य" जो संसार का प्राण-रक्षक है, वायुमण्डल को शुद्ध करके उसमें जीवन फूंकता है, पृथ्वी पर फैली हुई अशुद्धि के विषैले प्रभाव को मिटा करके शुचिता का प्रसार करता है, संसार से अंधकार को मिटा प्रकाश देता है, और अपनी प्रखर किरणों से सब अपवित्र वस्तुओं का नाश करके संसार को जीवन और जागृति प्रदान करता है। ठीक इसी प्रकार सूर्य की ही तरह एक महान ज्योति मानव के वेष में अपनी प्रखर किरणों के साथ तिमिराच्छादित विश्व को अंधकार से उजाले में लाने के लिए पैदा हुई और सब को चकाचौंध करती हुई फिर आकाश में विलीन हो गई। इस आकस्मिक प्रकाश को देख पथ-भ्रष्ठ मानव समुदाय अपनी भूल को समझ, सही पगडंडी को पकड़ने जा ही रहा था कि वह प्रकाश विलीन हो गया और कल्याण-पथ के पथिक किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो देखते ही रह गए। यह प्रकाश पुञ्ज महा-मानव थे—श्री स्वामी रामतीर्थ।

सूर्य प्रतिदिन उदय होता है, रविवार प्रत्येक आठवें दिन आता है, किन्तु वह जीता-जागता प्रकाश जो एक बार छिपा, फिर वह तब से प्रकट नहीं हुआ। पिछले कुछ वर्षों में आकाश रक्ताभ हो उठा था अवश्य। प्रकाश-पुँज भी एक स्पष्ट हो चला था और यह प्रतीत होता था कि स्वामी राम ने "स्वामी हरि ओ३म्" के वस्त्रों को धारण करके संसार में पुनः प्रवेश किया है, किन्तु जिस प्रकार कि तिमिराच्छन्न आकाश में एक बिजली सी कौंध जाती है और भूला हुआ पथिक फिर से मार्ग पकड़ लेता है, उसी प्रकार पथ-भ्रष्ट राम-भक्तों को सही कार्य

का निर्देश कर वह पुण्य-मयी विभूति भी असमय में ही अन्तर्हित हो गई ।

विज्ञान कहता है कि अन्तरिक्ष में अनन्त विभूतियाँ छिपी पड़ी हैं, आवश्यकता है ऐसी दूरबीनों (आँखों) की, जो उन्हें खोज सकें, निकाल कर विश्व के सामने पेश कर सकें । वेदान्त के अनुसार हमें अपनी आँखों में वह शान पैदा करती है जो उस प्रकाश-पुँज की आन को देख सकें ।

यह विधि की विडम्बना है कि अभी-अभी कुछ ही दिनों पूर्व तक जो मानव-शरीर में "कल्याण" मूर्तमान हो हमारे सामने बैठा था आज उसका चित्र अपने सामने रखने की आवश्यकता हो रही है । "उस स्वरूप को हम अब इन आँखों से न देखे पायँगे ।" यही कटु-सत्य अब रह गया है। उस महामानव से शब्द अन्तरिक्ष में व्याप्त हो रहे हैं यह सत्य होते हुए भी हमारे पास वह रडियो नहीं जो उन शब्दों को पकड़ ले और न एसा लाउड-स्पीकर है जो उन शब्दों को संसार में प्रसारित कर सके । इसके लिये हमें वेदान्त के अनुसार ऐसे श्रवण-रंध्रों का निर्माण करना होगा जो उन कभी न क्षय होने वाले अक्षरों को पकड़ उनमें ध्वनि को प्रकंपित कर सकें और संसार का कोना-कोना उस आवाज से गूँज जाय ।

गतवर्ष भी हमने देखा है कि स्वामी राम के नूतनावतार स्वामी श्री हरिओ३म् जी के ब्रह्मलीन होने पर हफ्तों तक भक्त-समुदाय की आँखों के आँसू नहीं थमे थे । उनकी प्यारी-प्यारी याद आज भी सैंकड़ों आँखों में आँसू ले आती है । हृदय में एक कसक सी पैदा हो जाती है और हूक सी उठने लगती है, किन्तु क्या हमारा यह रोना सच्चा रोना कहा जा सकता है ? मेरा अपना विचार है कि हम वास्तविक रूप से रो नहीं पाते हैं यदि स्वामी राम या स्वामी हरिओ३म् के विछोह का हमें सच्चा दुःख होता तो उनके दैवी गुणों का हज़ारवाँ भाग हम में भी अवश्य आ गया होता । हम तो उनकी भक्ति का दम भरते हैं केवल इस बात में कि उनके चित्रों को सुन्दर फ्रेम में जड़वा कर सामने

रखकर उसे हार समर्पित करके उसपर फूल चढ़ादें और उसको मस्तक नवाँ दें और इस प्रकार अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लें।

परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि चित्र-पूजन से हमारा कल्याण नहीं होने वाला है, अपने कल्याण के लिए हमें चरित्र-पूजन करना होगा, उनके द्वारा इंगित मार्ग पर आँख मूंद कर चलना होगा, उनका अंधानुकरण करना होगा। जब हम ऐसा करेंगे तभी अपने जीवन में सुख और शान्ति ला सकेंगे।

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज में असाधारण क्षमता थी। वे वास्तव में ब्रह्मपद तक पहुँचे हुए महामानव थे क्योंकि :—

(१) उनकी वाणी में कृष्ण की बाँसुरी जैसा माधुर्य था, बेहोश करने वाली मोहनी शक्ति थी, जो बरबस लोगों के दिलों को अपनी ओर खींच लेती थी।

(२) "आनन्द" उनका चिर-संगीत था और "शान्ति" उनकी सहचरी।

(३) "ओंकार" की झनकार, यह अनहद-ध्वनि निरन्तर उनकी हृद्-तन्त्री को झंकृत करती रहती थी।

(४) वे प्रेमावतार थे। साँप, बिच्छू, शेर, चीते, जंगली हाथी और बन-मानुस उनके साथ निर्द्वन्द हो खेलते थे। उनके आश्रम में सिंह और मृग एक घाट पानी पीते थे और एक साथ किलोलें करते थे।

(५) तन-क्षीण, मन-मलीन, वित्तहीन, दीन दुःखी-जन की व्यथा से उनका हृदय काँप उठता था और दरिद्र-नारायण की सेवा को वे सच्ची देवोपासना समझते थे।

इन महान् गुणों के तो वे पुंज थे ही, किन्तु उनकी आध्यात्मिक शक्ति असाधारण तौर पर ऊँची उठी हुई थी; वे बात करते-करते समाधि में लीन हो जाया करते थे।

यदि हम सचमुच आध्यात्मिक ज्ञान के भूखे हैं तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि—

(१) उनके चरित्र की बातों को पढ़ें, उस पर मनन करें, उनके अनुसार आचरण करें तथा अपने चरित्र को ढालने का प्रयत्न करें और उनके बताए विचारों को चिन्तन के धागे में पिरो माला बनाकर अपने वक्ष पर धारण करें।

(२) राम के नाम का स्मरण करके उनसे प्रेरणा लें। वास्तव में उनका नाम ही कल्याण का प्रतीक और प्रेरणा का स्रोत है।

(३) उनके उदाहरण को सामने रखकर और अन्तर्मुखी हो अपने स्वरूप को पहचानें, अपनी कमज़ोरियों से परिचित हों और अपनी ग़लतियों को सुधारें, साथ ही दूसरों के गुणों को बड़ी उदारता से प्रकाश में लावें।

जब हम ऐसा करेंगे तो राम का चित्र भी सजीव होकर नाच उठेगा। इसीलिए मैं कहती हूँ कि—

"पूजा हमें चित्र की नहीं चरित्र की करनी है।"

जिसने मानव शरीर धारण किया है, उसमें कमियाँ अवश्य होती हैं। किन्तु सच्चे महामानव उन त्रुटियों पर विजय पाते हुए ऐसे ही शोभायमान होते हैं, जैसे कि कीचड़ में खिला हुआ कमल का फूल। यदि कमल के फूल को तोड़ कर सुन्दर सजीले काँच या सोने के फूल-दान में रक्खो, वह सुन्दर तो लगेगा, किन्तु कीचड़ में खिले हुए कमल की सुन्दरता के मुकाबले में वह कुछ न होगा। इसलिए चित्रों का पूजन दिखावटी है, और उस महामानव का, जिसका कि चित्र हम सामने रखकर पूजते हैं, मजाक उड़ाना है।

हम और आप अपनी आँखों से देख चुके हैं कि कुछ ही वर्ष पूर्व महात्मा गाँधी ने शराब तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों के आगे पिकेटिंग

करने का आन्दोलन उठाया था। तम्बाकू किसी भी दशा में पीना आध्यात्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है, परन्तु हम आज देखते हैं कि जनता ने उसी महात्मा की तस्वीरें ऐसे स्थानों पर लगाई हैं, जहाँ न मालूम किस-किस तरह की इन्सानियत से गिरे हुए व्यापार चल रहे हैं। क्या यह गाँधी जी के आदर्शों की पूजा है ? यह तो सही माने में उनकी मज़ाक उडाना है।

राष्ट्रीय झण्डा कितनी पवित्र वस्तु है, किन्तु उसी डिज़ाइन के जूते तक तैयार हो गये हैं, कितने दुःख की बात है कि हमारा देश जो आध्यात्मिक दिशा में सब का लीडर रहा, आज उसकी जनता का यह हाल। यदि हम ऊँचे आदर्शों का पालन नहीं कर सकते तो हमें कोई हक़ नहीं कि हम उन पवित्र आदर्शों को गिराने की कोशिश करें।

स्वामी श्री हरिओ३म् जी ने यह सत्संग नहीं कायम किया है बल्कि एक संगम बनाया है जहाँ कई आत्माऐं आकर मिलती हैं। इस प्रकार के पुण्य-स्थलों से अब राम तथा हरिओ३म् जैसे माहामानवों के चरित्र की पूजा रूपी बरफ़ हमारी भावना की गरमी से पिघल कर सरिताओं के रूप में नित्य बहती रहेंगी।

न हम कुछ हँस के सीखे हैं, न कुछ हम रोके सीखे हैं,
अगर कुछ सीख पाये हैं, किसी के हो के सीखे है।

अब अपने दिल को ऐसे रखना है, कि बाहर के आडम्बर का उस पर असर ही न हो—

अय दिल, इस तरह से रो, कि आँखें ये तर न हों,
तुझ को खबर हो, और किसी को खबर न हो।

काँटों में फूलने वाली एक भारतीय बाला

(संपादिका)



फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज के गणित-प्रोफेसर
गोस्वामी तीरथराम एम० ए०

राम-दर्शन*

"....तीसरे महापुरुष, जिनसे मेरा घनिष्ठ परिचय था और जिनके साथ मैंने काम किया था, पंजाब के स्वामी रमातीर्थ एम० ए० थे। आप उन उत्तम और उत्कृष्ट आत्माओं में से थे, जो आत्मा की उच्चतम आकांक्षाओं की प्राप्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिए कभी-कभी मानव-जाति के मध्य में आया करती हैं। स्वामी जी ने पंजाब के गुजरानवाला जिले के एक धर्म-परायण ब्राह्मण-वंश में जन्म लेकर, और कोई पूँजी पास न होते हुए भी, २०-२१ वर्ष की अवस्था में, पंजाब यूनिवर्सिटी से गणित में एम० ए० परीक्षा पास करके नाम पैदा किया। इसके बाद वे लाहौर के फ़ोरमैन क्रिश्चियन कालेज के प्रोफ़ेसर बनाये गए। परन्तु उपनिषदों के महान् सिद्धान्त "तत्त्वमसि" (वह तू है) की सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए वे शीघ्र ही अपने इस पद तथा कुटुम्बियों और मित्रों से सारा सम्बन्ध त्यागकर हिमालय की ओर चल दिए।

बगल में उपनिषद् की एक पोथी दबी हुई है, साथी हैं जंगल के पशु-पक्षी और पहाड़ी गंगा का स्वच्छ जल। गरमी, सर्दी, और वन की सभी मुसीबतों को झेलता हुआ, जीवन की समस्याओं पर गंभीर विचार में रत, यह नवयुवक वर्षों तक लगातार भटकता रहा। कभी वह कैलाश-शिखर पर चढ़ता है, तो कभी काश्मीर में अमरनाथ की यात्रा कर रहा है। यदि आज यमुना के मूल-स्थान यमुनोत्तरी के दर्शन करने गया है, तो कल गंगा के मूल-स्रोत गंगोत्तरी जायगा। नित्य नदी के

---

* स्व० लाला बैजनाथ जी जज द्वारा लिखित—"तीन आधुनिक भारतीय सुधारक" नामक पुस्तक से संकलित। —सम्पादिका

तट पर विचार में बराबर दिन-पर-दिन बिता रहा है। इतने पर भी जब वह अभीप्सित वस्तु को प्राप्त न कर सका, तो संसार का अस्तित्व भूल कर उसने अपने शरीर को गंगा में डाल दिया और लो, गंगा ने उसे उठाकर एक चट्टान पर बिठा दिया। अन्त को २६ वर्ष की अवस्था में उसे ध्यान के द्वारा उस वस्तु की प्राप्ति हुई, जिसे वह ढूंढ रहा था।

अब वह अपने आपको भारत की सेवा में लगाने के लिए पहाड़ों से नीचे उतर कर जन-समाज में आता है, और अनेक सम्प्रदायों तथा राष्ट्रों के हज़ारों मनुष्यों को उपदेश देता है। केवल अपनी ज्ञान-पिपासा और मनोहर व्यक्तित्व के बल पर ही वह लोगों को अपना अनुयायी बना लेता है। वह शारीरिक आराम-चैन से बेपरवाह है, जो कुछ सादा-से-सादा भोजन उसे मिल जाता है, कर लेता है, और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के सिवा कोई भी चीज कभी अपने साथ नहीं रखता। रुपया-पैसा या वस्त्र अथवा दूसरी चीजें ज्यों ही उसे भेंट की जाती हैं, वह दूसरों को दे देता है। इस संन्यासी द्वारा प्रेमी भक्तों के दिए हुये स्वादिष्ट भोजन इस कारण त्याग दिये जाते हैं कि जो लोग सत्य का जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखते हैं, उनके भाग्य में रहता है केवल उच्च विचार और सादा रहन-सहन। न अपनी श्रेष्ठता का व्याख्यान, न आचरणों का अभिमान और न अपनी बढ़ाई का भान। जिस किसी का इस स्वामी से संसर्ग हो जाता है, वही उसकी मुस्कराहटों से मोहित हो जाता है, और उसे जान पड़ने लगता है, मानों उसके सब संकट और दुःख उस समय दूर हो गये। उन्हें अध्ययन का अनुराग इतना अधिक था कि थोड़े ही समय में पाश्चात्य धार्मिक और तात्त्विक पुस्तकों का पूरा पुस्तकालय ही पढ़ डाला। उपनिषदों के ऋषियों,—व्यास, कृष्ण, शंकर, बुद्ध के वाक्य उतने ही उनकी जिह्वा के अग्र-भाग पर थे, जितने कि शम्स-तबरेज और

मौलाना रूम के। काण्ट, शोपेनहार, फिचटे और हिगेल उनके उतने ही परिचित थे, जितने कबीर और नानक। परन्तु उर्दू-काव्य स्वामी जी का विशेष विषय था और लक्षणों से प्रतीत होता है कि उनके पद्य भारतीयों में वेदान्त के अन्य अनेक प्रमाण-भूत श्लोकों की तरह प्रचलित हो जायँगे।

सन् १६०२ में, हम उन्हें जापान होकर अमेरिका जाता हुआ पाते हैं। वहाँ उन्होंने दो वर्ष के काल में अनेक विद्वान और अग्रणी जनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। अमेरिका की "ग्रेट पैसिफ़ि रेल-रोड कम्पनी" के प्रबन्धकर्ता ने उन्हें "पुलमैन कार" से उपमा देते हुए कहा था—"उनकी मुस्कराहट दुर्निवार है।" अमेरिका में अपने भक्तों की पूजा-अर्चा से ही उन्हें संतोष नहीं हुआ, वहाँ वे भारत का हित-साधन करने के लिए प्रयत्न करते रहे। "कार्य करना", उनका मूल मन्त्र था। वे कहते थे—"हमारे सामने ठीक तरह का यज्ञ (बलिदान) है, दीन-हीनों की सेवा और रक्षा करना और इस यज्ञ को इस प्रकार करना चाहिये कि कार्य अपने उद्देश्य को नष्ट न कर सके। प्रत्येक भारतवासी को अपने से छोटों को, चाहे वे पद, धन, विद्या या शक्ति किसी में छोटे हों, अपने बच्चों की तरह मानना और उनकी सहायता करनी चाहिए और बिना किसी पुरस्कार की इच्छा के माता के उस परम आनन्द को, जो उत्साह और प्रेम-रूपी आत्मिक भोजन के देने से मिलता है, प्राप्त करना चाहिए; यही वास्तविक "निष्काम यज्ञ" है।" इस के लिए उन्होंने अपने निराले ढंग से कार्यकर्त्ता जुटाये थे; उन्होंने छपवाया था—

आवश्यकता है, सुधारकों की—
उनकी नहीं, जो औरों को सुधारते हैं;
किन्तु उनकी, जो अपने आपको सुधारना चाहते हैं।
उनकी नहीं, जिन्होंने विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त की हैं;

किन्तु उनकी, जिन्होंने अपने आप पर विजय पाई है।
अवस्था—ब्रह्मानन्द रूपी युवावस्था।
वेतन—ईश्वरत्व।
शीघ्र प्रार्थना पत्र भेजो,
जिसमें भिखमंगों की-सी याचना न हो,
किन्तु हो, जिसमें आदेशपूर्ण निश्चय।

पश्चिम में दो वर्ष रहकर स्वामी जी भारतवर्ष लौटे, परन्तु इतने ही समय में वहाँ की असली ज़िन्दगी का जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया, वह किसी दूसरे मनुष्य को बीसों वर्षों में भी नहीं हो सकता था। इस ज्ञान को उन्होंने उदारतापूर्वक अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा अपने देश-वासियों के चरणों में रखा है। उनके समस्त लेख और व्याख्यान पूर्व के अगाध पाण्डित्य और पश्चिम के व्यावहारिक जीवन की छाप से अंकित होते थे। भारत के लिए हल करने योग्य जो प्रश्न हैं, उन्हीं के शब्दों में सुनिए। भारत का परिचय देते हुए उन्होंने अमेरीका में कहा था—

"व्यावहारिक बुद्धि की दरिद्रता के साथ-साथ वहाँ पर जनसंख्या की अधिकता है। शारीरिक श्रम से घृणा, जाति-पाँति के अस्वाभाविक विभाग, विदेश-यात्रा का विरोध, बाल-विवाह और स्त्रियों को व्यापक शारीरिक, और बौद्धिक अन्धकार में रहने को विवश करना आदि सब बातें इस व्यावहारिक बुद्धि के अभाव के ही अन्तर्गत हैं। पूर्व पुरुषों से दाय (धन) मिले बिना हमारा काम नहीं चल सकता। जो-जो समाज इस (दाय) का त्याग करता है, वह अवश्य बाहर से नष्ट हो जायगा। साथ ही इस अंश के बहुत अधिक होने से भी काम नहीं चलता। जिस समाज में इसका बाहुल्य है, वह भीतर से नष्ट हो जायगा।

उन बड़े आदमियों से, जिनके विचार छोटे हैं, देश बलवान् नहीं होता, परन्तु उन छोटे आदमियों से, जिनके विचार बड़े हैं, देश

बलिष्ठ होता है। एक औसत भारतीय घर समग्र राष्ट्र की अवस्था का प्रतिनिधि है। दरिद्रता का हेतु केवल आमदनी की कमी और खानेवालों की हर वर्ष वृद्धि ही नहीं है। परन्तु निरर्थक और निष्ठुर रीतियों में अनुचित खर्च करने की गुलामी भी है। यदि आबादी की समस्या बिना हल किए छोड़ दी गई, तो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय-करण की सभी चर्चा निष्फल होगी। विदेशी-यात्रा से ज़ाति या धर्म नष्ट होता है, इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति को दूर करना भी इसकी एक औषध है। यह धारणा त्यागी जानी चाहिए कि बच्चों के होने पर ही तुम्हारा स्वर्ग में प्रवेश निर्भर करता है। विवाह को पूर्ववत् मधुर सम्बन्ध बनाना चाहिए। देश में अयोग्य, असमर्थ, अशक्त, परान्न भोजियों की वृद्धि करने के लिए विवाह मत करो। सारांश यह कि खाँडे की धार पर तुम्हें शुद्धता प्राप्त करनी होगी। बिना शुद्धता के न वीरता है, न एकता और न शान्ति।

शिक्षा के क्षेत्र में, प्रधान कर्त्तव्य हमारे सामने ग़रीबों और स्त्रियों को शिक्षा देना और उन्नत देशों में युवकों को भेज कर कृषि-विद्या और कला-कौशल सिखाना तथा उन उपयोगी विद्याओं को भारत में खूब फैलाना है। यदि विश्वास की लौ और प्रज्वलित ज्ञान की मशाल तुम्हारे हृदय में नहीं जल रही है, तो हम एक कदम भी नहीं बढ़ सकते। ज़बानी जमा-खर्च की अपेक्षा प्रकृति की गहराई में रहना, अपने अस्तित्व की गहराइयों को नापना, हम में जो आन्तरिक वास्तविकता है, उसे अनुभव करना और प्राप्त करना, "तत्त्वमसि" की जीती-जागती मूर्ति होना, यही जीवन है, यही अमरता है,।"

किसी भी धर्मोपदेशक ने और किसी समाज-सुधारक ने इस प्रश्न को महामना स्वामी जी से बढ़कर न तो अधिक स्पष्टता से वर्णन किया है और न इस गुत्थी को सुलझाया है। खेद इसी बात का है कि भारत में उनके कथनों की सत्यता का अनुभव करने वाले बहुत थोड़े लोग हैं।

अस्तु थोड़े दिनों तक मैदानों में काम करने के बाद वे अपने साधारण अध्ययन और ध्यान करने के लिए हिमालय में एकान्तवास को चले गये और ३३ वर्ष की अवस्था में, टिहरी के निकट, स्नान करते समय दीपावली के दिन गंगा में डूबकर उन्होंने यह शरीर त्याग दिया ।

उनके उपदेश का सार पूर्व की दार्शनिक बुद्धिमत्ता का, जापान और अमेरिका की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से मेल कराना था। "न आत्म-अपकर्ष, न जान-बूझकर सिसक-सिसककर आत्म-हत्या, न संसार से बिल्कुल विलगता, न संयम-शून्य और विवेक रहित वंश-वृद्धि, न अज्ञानता और दासता में तृप्ति, न भूतकाल का विचारहीन और निर्बलकारी संकीर्तन और न वर्तमान तथा भविष्य का विस्मरण; परन्तु पुराने आडम्बरों का त्याग और अन्ध-विश्वास का दूरीकरण"—यही उस महान् ऋषि का सन्देश है। उनके प्रभाव का उन्हीं के साथ अन्त नहीं हो गया, वरन् हर साल वह धीरे-धीरे और तत्परता से केवल हमारे नवयुवकों में ही नहीं, प्रत्युत साधु-समाज में भी, जो पहले उनकी उपेक्षा करता और उन्हें संशयालु-दृष्टि से देखता था, प्रवेश करता जाता है।



अय मेरे प्यारे कृष्ण ! मुझे तो अब उस देवता की उपासना करने दे जिसकी समस्त पूँजी एक बूढ़ा बैल, एक टूटी हुई चारपाई, एक पुराना, चिमटा, थोड़ी-सी राख, नाग और एक खाली खोपड़ी है। तो क्या वह महिम्न-स्तोत्र के महादेव हैं ? नहीं, नहीं। वे तो साक्षात् नारायण स्वरूप में भूखे भारतवासी हैं। उनकी पूजा ही मेरा धर्म है, भारत के प्रत्येक मनुष्य का यही धर्म, यही साधारण मार्ग, यही व्यावहारिक वेदान्त और यही भगवान् की भक्ति होना चाहिए।

—राम

१. विश्व-शान्ति

"राम" इतना विस्तृत शब्द है कि इसमें सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। यह साढ़े तीन हाथ का शरीर विश्व मात्र का प्रतीक है। कौन-सी वस्तु है जो इसमें नहीं प्राप्त है। केवल देखने के लिए आँखें चाहिए, किन्तु देखने और स्वतन्त्रता का आभास पाने के लिए हमें थोड़ा-सा सावधान रहना है। पहिले हमें मन को वश में करना होगा और तब संयम के बाद उसको पूरी स्वतंत्रता देनी होगी। फिर क्या है ? अलौकिक आनन्द ही आनन्द। स्वामी राम का यही रूप था। सारे संसार को उन्होंने अपना घर बना लिया था; सारी संस्थाओं और सोसायटी को वे अपना ही मानते थे; प्रत्येक धर्म में अपने प्रियतम कृष्ण का ही दर्शन पाते थे और उन्होंने इसी सिद्धान्त के आधार पर जनता को सच्चे वेदान्त का सच्चा दर्शन कराया। उनकी यह विश्व-शान्ति की रचना उन्हीं के शब्दों में पढ़िये। —सम्पादिका

"मैं साढ़े तीन हाथ के टापू (शरीर) में कैद नहीं हूँ, वरन् सबकी आत्मा—सब का अपना आप—मैं ही हूँ। पाताल देश (अमेरिका) के लोगों ने भी इस बात को मान लिया है। हर एक को भाले की नोक के नीचे या प्रकृति के डंडे के जोर से स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आत्मा के सिवा और कोई स्थान आनन्द का नहीं है। आनन्द का भण्डार यदि है, तो वह केवल अपना आपा ही है। उसी में स्वतंत्रता है, उसी में शांति और उसी में आनन्द है। मद्य पीना लोग क्यों नहीं छोड़ते ? आप लोग हजारों यत्न करते हैं, टेम्परैंस सोसाइटियाँ सदैव इसको त्याग देने का उपदेश करती रहती हैं, मगर क्या कारण है कि तिस पर भी लाखों व्यक्ति इस वर्जित मदिरा को नहीं छोड़ते। कारण यही है कि वह अपने आत्मदेव की कुछ थोड़ी-सी झलक (स्वतंत्रता)

दिखला देती है, अथवा शरीर-रूपी बंदी-गृह से थोड़ी देर के लिए छुटकारा दे देती है।

हाय स्वतंत्रता, प्रत्येक व्यक्ति इसी का इच्छुक है, समस्त जातियों और समाजों में सदैव "स्वतंत्रता-स्वतंत्रता" का ही शोर सुनने में आता है, बच्चे भी इसी के अभिलाषी हैं। बच्चों को रविवार सब दिनों से अधिक प्यारा क्यों लगता है? केवल इसलिए कि वह उनको ज़रा स्वतंत्रता दिलाता है अर्थात् उस दिन बच्चों को छुट्टी मिल जाती है। यह छुट्टी का दिन केवल बच्चों को ही प्रसन्न और मुदित नहीं करता, वरन् इसके नाम से स्कूल के मास्टरों और दफ्तर के क्लर्कों के पीले चेहरों पर भी सुर्खी आ जाती है।

प्रयोजन यह कि प्रत्येक को स्वतंत्रता का आनन्द प्यारा है। क्यों न हो? स्वतंत्रता तो मुक्त पुरुष का स्वरूप ही है। अपना स्वरूप प्रत्येक को निस्सन्देह प्यारा होता है। हाँ, जब कोई प्यारा अपने स्वरूप से पृथक् होकर सांसारिक बन्धनों और पदार्थों में इस स्वतंत्रता के पाने का प्रयत्न करता है, तो वह अपने आपको अंततः खाली हाथ ही पाता है। इस कारण प्रत्येक अनुभवी पुरुष बोल उठता है कि संसार में या सांसारिक पदार्थों में वास्तविक स्वतंत्रता कदापि नहीं मिलती। क्योंकि वास्तविक स्वतंत्रता तो देश, काल और वस्तु की सीमा से परे हटकर मिलती है, इनके कीचड़ में फँसे रहने से नहीं प्राप्त होती। देश, काल और वस्तु के बन्धन में पड़कर तो सैकड़ों देश और राष्ट्र इस स्वतंत्रता के लिए लड़े और मरे। रूस और जापान का युद्ध केवल इसी स्वतंत्रता के लिए हुआ, किन्तु स्वतंत्रता फिर भी संसार में आकाश-पुष्प ही रही।

प्यारो! जो मनुष्य निज स्वरूप, आत्मा में निष्ठा रखता है, वह स्वतंत्र ही है, क्योंकि आत्मा ही स्वतंत्रता का भण्डार है, और जो अपने स्वरूप (आत्मा) का साक्षात्कार (अनुभव) नहीं करता, वह न इस लोक में स्वतंत्र हो सकता है और न परलोक में अविनाशी आनन्द को

प्राप्त कर सकता है। ज्ञानवान पुरुष ही इस संसार के पदार्थों और बन्धनों से मुँह मोड़कर मुक्ति के अमृत को प्राप्त करते हैं।

डाक्टर जान्सन और "डेज़र्टेड विलेज" नामक काव्य के रचयिता अंग्रेज कवि गोल्डस्मिथ में इस विषय पर बहस हो रही थी कि बातचीत करने में ऊपर का जबड़ा हिलता है या नीचे का। यह सीधी-सादी बात थी, मगर इस बड़े लेखक (गोल्डस्मिथ) की समझ में नहीं आती थी, यद्यपि इस बात पर उसका अमल था।

जैसे अंग्रेजों के यहाँ क्रॉमवेल और मुसलमानों के यहाँ बाबर हुआ है, वैसे ही हिन्दुओं के यहाँ इस युग में रणजीतसिंह हुआ है। इस भारत के गौरव और पंजाब के नर-केसरी का जिक्र है कि एक बार शत्रु की सेना अटक नदी के पार थी और उसके आदमी नदी के पार जाने से झिझकते थे। इसने अपना घोड़ा उस नदी में यह कहकर डाल दिया—

सभी भूमि गोपाल की, या में अटक कहा ?
जाके मन में अटक है, वो ही अटक रहा।

उसके पीछे उसकी सारी सेना नदी को पार कर गयी। यद्यपि शत्रु की सेना के सामने ये थोड़े से आदमी थे, किन्तु उनकी यह वीरता देखकर शत्रु की सेना के दिल धड़क उठे, सब के सब इनके इस उत्साह से भयभीत होकर भाग गये, और युद्ध-क्षेत्र भारत के उस सूरमा के हाथ आया। बात क्या थी ? उसके हृदय में विश्वास का जोश हिलोरें मार रहा था। वह रात भर ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता था। उसकी प्रार्थनाओं में खून आँसू होकर आँखों की राह बह निकलता था। यही कारण था कि उसके भीतर वह बल आ गया। आत्म-बल, विश्वास-बल या इलहाम की शक्ति से वह भर गया, अथवा दूसरे शब्दों में यों कहो कि उसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया। यहाँ ज़बानी जमा-खर्च का काम नहीं। साक्षात्कार वह अवस्था है, जहाँ रोम-रोम से आनन्द बह रहा हो। कहते हैं, हनुमान के रोम-रोम में राम लिखा हुआ था।

इसी तरह इस रणजीतसिंह के भीतर विश्वास का बल भरा हुआ था। ऐसे साक्षात्कारवालों को नदी भी मार्ग दे देती है, पर्वत भी उसे अपने सर-आँखों पर उठा लेता है। संसार की सफलता का भी यही गुर है इसी को भीतर की शक्ति या आत्म-बल कहते हैं। वह समझने लगता है कि मेरे भीतर वाला परमेश्वर सर्व-शक्तिमान् है—

"वह कौन-सा उक़दा है जो वाँ हो नहीं सकता ?"
वह कौन-सी है, ग्रन्थि जो खुल नहीं सकती ?

जर्मनी का बादशाह फ्रैडरिक दि ग्रेट फ्रांस के साथ लड़ रहा था। उसकी फौज हार गयी और वह परास्त हुआ। कुछ लोग मारे गये, कुछ फ्रांसीसियों के हाथ आ गये। यह बादशाह विद्या-प्रेमी और ईश्वर-भक्त था। इसको आत्म-साक्षात्कार की कुछ थोड़ी-सी झलक आ गयी थी। इसने उन थोड़े से बचे-खुचे आदमियों से कहा कि दस-पाँच आदमी एक प्रकार का बाजा लेकर पूरब से बजाते हुए आओ, कुछ लोग पश्चिम से, कुछ उत्तर से और कुछ दक्खिन से। तात्पर्य यह कि वे थोड़े से आदमी चारों ओर से बाजा बजाते हुए उस किले के भीतर आने लगे, जिसे फ्रांसीसियों ने छीन लिया था, और यह नर-केसरी अकेला, बिना हथियार लिये हुए, उस किले में घुस गया, और उच्च स्वर से लगा कहने—"यदि अपने प्राण बचाना चाहते हो, तो अपने-अपने हथियार फेंक दो, और किला छोड़ कर भाग जाओ, नहीं तो मेरी सेना जो चारों ओर से आ रही है, तुमको मार डालेगी।" चारों ओर से बाजों की आवाज़ सुनकर और इस वीर पुरुष का साहस देखकर वह लोग घबरा गये और तत्काल दुर्ग छोड़ कर भाग गये। इस वीर पुरुष ने अकेले और बिना अस्त्र-शस्त्रों के उस दुग पर विजय पायी और शत्रुओं की बड़ी हार हुई। बस, संसार में भी इस "आत्म-बल" की आवश्यकता है, इसके साक्षात्कार की ज़रूरत है।

राम जान-जानकर विदेशों की कहानियाँ तुमको सुनाता है कि

तुमको ज़रा तो खयाल आये। यह अमृत अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार करना निकला तो भारतवर्ष से ही है, किन्तु इससे लाभ उठा रहे हैं अन्य देश वाले। प्रत्येक को इस ब्रह्म-विद्या की आवश्यकता है। क्या धार्मिक उन्नति और क्या सांसारिक उन्नति, दोनों के लिए विश्वास या वेदान्त या ब्रह्मविद्या या आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता है। क्या तुमको इस आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है ? यह भीतर का आत्मबल ही तुम्हारा आचरण है और बाहर के रगड़े-झगड़े तुम्हारे आत्मबल को जोखिम में डालते हैं। जब मनुष्य सीधी तौर से इस आचरण को प्राप्त नहीं करता, तो विपत्तियाँ उसके भीतर से आत्मबल को उभाड़ कर यह आचरण उत्पन्न कर देती हैं। विकासवाद का नियम पुकार-पुकार कर इसी उत्तम पाठ का उपदेश कर रहा है, और यह प्रकृति का नियम है कि जिनमें बल होगा, वे, वहीं स्थिर रहेंगे; जिसके भीतर साहस है, उसी में शक्ति है और जिसमें शक्ति है, उसी में जीवन है। साहस तो भीतर की वस्तु है। जहाँ परमेश्वर है, वहीं साहस है। डण्डे की मार पर काम करना तो पशुओं का जीवन है; मनुष्य समझ लेता है और उसे काम में ले आता है।

खुद तो मुँसिफ़ बाश ऐ जाँ है निको या औंनिकी।

अर्थात् "अय प्यारे, स्वयं न्यायी बन और सोच कि यह अच्छा है या वह अच्छा है।" क्या आवश्यकता है कि प्रकृति तुमको डण्डे मार-मारकर सिखलाए ? खुशी से क्यों न सीखो।

इस जगत् से मुँह मोड़ना क्या है ? एक तो यह कि बाहर की वस्तुएं आपकी दृष्टि में न रहें, दूसरे यह कि "मूतू कब्ल-अलू मूतू" अर्थात् मरने से पहले मर जाना है, या सब कुछ उस ईश्वर (अपने आत्मा) के अर्पण कर देना है। जब सब बाहर की वस्तुएँ इस प्रकार आहुति में डाल दी जाती हैं, तब तो त्रिलोकीनाथ ही रह जाते हैं। कोई भी मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि उसमें आत्मबल

का विश्वास न हो। जिसमें यह विश्वास अधिक है, वह स्वयं भी प्रगति करता है और औरों को भी आगे बढ़ाता है—

रवां कुन चश्महा-ए-कौसरी रा।

अर्थात् "कौसर (नदी) के सोतों को बहने दे।" ये ही स्वर्ग की या आत्मानन्द की नदियाँ हैं। किसको इस पानी की जरूरत नहीं है ? फूल हो या घास, गेहूँ हो या कपास, मनुष्य हो या पशु, सभी को इस पानी की ज़रूरत रहती है।

सुलेमाना बियार अंगुश्तरी रा।

अर्थात् "ऐ सुलेमान, अंगूठी को ला।" जब अँगूठी मिलगयी फिर भटकना किस लिए ? कहाँ तो तुम्हारा स्वराज्य और कहाँ तुम भिखारी ? कहाँ तो तुम्हारा आत्मानन्द का धाम और कहाँ यह हाड़-चाम ?

सूरज को सोना, चाँद को चाँदी, तो दे चुके,
फिर भी तवाफ़ करते हैं देखूँ जिधर को मैं।

यह कोई अलंकार नहीं है सच्ची घटनाएँ हैं। सीधे-सादे शब्दों में इसका यह अर्थ होता है कि सिवा परमेश्वर के तुम्हारा आत्मा कुछ और नहीं है। "जब परमेश्वर मेरा आत्मा है, तो मैं दुःख में कैसे रहूँ ?" इसमें पूर्ण विश्वास रखने वाले व्यक्ति हमारे देश में असंख्य हो गए हैं, जिनके भीतर से विश्वास की सरिताएँ बह निकली हैं, और इस अमृत से देश-के-देश सींचे गये हैं। अरब में भी कोई-कोई हो गया है, जिसके भीतर से यह विश्वास की आग भड़क उठी। यह विश्वास कभी दासोऽहम् के भाव में और कभी शिवोऽहम् के भाव में प्रकट हुआ करता है। वह अरब-केसरी सबको यों दहाड़ता है—

अगर सूरज हो मेरी दाईं तरफ़,
और हो चाँद भी बाईं जानिब खड़ा।
कहे मुझ से गर दोनों—बस, अब रुको,
न मानूँ कभी कहना उनका ज़रा।

२. राष्ट्रीय धर्म

कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य हमारे जीवन के दो पहिये हैं। हमें उन पहियों के सहारे चल कर जीवन-क्षेत्र में जाना पड़ता है। और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हमारा भिन्न-भिन्न प्रकार का कर्त्तव्य होता है। अपनी मातृ-भूमि के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं ? उसको खुशहाल बनाने के लिए ह ें क्या-क्या करना होगा ? यह सब सोचना ही एक सबसे बड़ा सबक है। स्वामी राम में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी थी। उनकी रग-रग के अन्दर मातृ-भूमि का प्रेम लहरा रहा था। उन्होंने सन् १९०४ में जो भविष्य-वाणी की थी—"२० वीं सदी के पहले अर्द्ध-भाग में, अर्थात् सन् १९५० के पूर्व ही भारत को 'राम' इस शरीर के द्वारा अथवा सहस्रों अन्य शरीरों के द्वारा इस गौरव पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करा देगा जो अबतक इसे प्राप्त नहीं हो सका है। आज (१९०४ में) कहे हुए राम के इन शब्दों गाँठ बाँध लिया जाय।" आज हम सबने अपनी आंखों से इस सत्य को देखा। १९४७ में भारत ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करली। उनकी यह भी भविष्य वाणी थी कि आर्यावर्त्त सदा की भांति आध्यात्मिक क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व करेगा। निम्नलिखित शब्द उनके हृदय के उद्‌गार प्रकट करते हैं कि राष्ट्रीय-धर्म क्या है ?

मेरा शिशुपन व जवानी, मुझे याद आई,
मन में उदासी मेरे छा गई।

देखता मैं रहा जबकि उस अस्तिमित
लाल, रवि को, दया-सी मुझे आ गई॥

भूत युग जल्द मेरे निकट आगया,
पास भूतों का मजमा खड़ा हो गया।

उनके उतरे कफ़न, प्राण आये तो गालों,
का रंग उनके फिर लाल सा हो गया ॥
व्याह-बाजों सी उनकी सुरीली सदा,
एकदम मेरे कानों में आने लगी ।
लाल रवि की तरफ़ उनकी आँखें मेरी,
आँख के साथ नजरें मिलाने लगीं ॥
बीते तबसे बहुत दिन तथा,
दुखः-सुखमय बरस भी बिताये अनकों कहीं ।
दूर तक मैं चतुर्दिक फिरा घूमता,
मैं हूँ अस्वस्थ, संशय गया यह नहीं ॥
क्योंकि जब प्रायः यह सूर्य है डूबता,
अश्रु-जल आँख में मेरे भर आता है ।
और तब दृश्य आता पुनः मोद-मय,
मेरा भारत दुलारा नज़र आता है ॥

—**सम्पादिका**

अय डूबते हुए सूर्य, तू भारत भूमि पर निकलने जा रहा है । क्या तू कृपा करके राम का यह संदेशा उस तेजोमयी प्रतापी माता की सेवा में ले जायगा ? क्या ही अच्छा हो, यदि यह मेरे प्रेम-पूर्ण आँसू भारत के खेतों में पहुँचकर ओस की बूंदें बन जायँ । जैसे एक शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, बौद्ध बुद्ध की, ईसाई ईसा की और मुसलमान मुहम्मद की, वैसे ही मैं प्रेमाग्नि में निमग्न चित्त से भारत को शैव, वैष्णव, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, संन्यासी, अछूत, इत्यादि भारत सन्तान के प्रत्येक बच्चे के रूप में देखता और पूजता हूँ । अय भारत माता, मैं तेरे प्रत्येक रूप में तेरी उपासना करता हूँ । तू ही मेरी गंगा है, तू ही मेरी काली देवी है, तू ही मेरी इष्ट

देवी है तू ही मेरा शालिग्राम है। भगवान् कृष्णचन्द्र, जिनको भारत की मिट्टी खाने की रुचि थी, उपासना की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जिसका मन अव्यक्त की ओर लगा हुआ है, उनके लिए बहुत-सी कठिनाइयाँ है, क्योंकि अव्यक्त का रास्ता प्रत्येक के लिए अत्यन्त कठिन है।

अय मेरे प्यारे कृष्ण ! मुझे तो अब उस देवता की उपासना करने दे जिसकी समस्त पूँजी एक बूढ़ा बैल, एक टूटी हुई चारपाई, एक पुराना, चिमटा, थोड़ी-सी राख, नाग और एक खाली खोपड़ी है। तो क्या वह महिम्न-स्तोत्र के महादेव हैं ? नहीं, नहीं। वे तो साक्षात् नारायण स्वरूप में भूखे भारतवासी हैं। उनकी पूजा ही मेरा धर्म है, भारत के प्रत्येक मनुष्य का यही धर्म, यही साधारण मार्ग, यही व्यावहारिक वेदान्त और यही भगवान् की भक्ति होना चाहिए। केवल कोरी शाबाशी देने या थोड़ी-सी सहिष्णुता दिखाने से काम नहीं चलेगा। भारत माता के प्रत्येक पुत्र से मैं ऐसा क्रियात्मक सहयोग चाहता हूँ जिससे वह चारों ओर प्रति-दिन दिनानुदिन बढ़ने वाले राष्ट्रीय जीवन का संचार कर सके। संसार में कोई भी बच्चा शिशुपन के बिना युवावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी तरह कोई भी मनुष्य उस समय तक विराट् भगवान् से अभेद होने के आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेद-भाव उसकी नस-नस में पूरा जोश न मारने लगे। भारत माता के प्रत्येक पुत्र को समस्त देश की सेवा के लिए इस दृष्टि से तैयार रहना चाहिए कि "समस्त भारत मेरा ही शरीर है।" भारतवर्ष का प्रत्येक नगर, नदी, वृक्ष, पहाड़ और प्राणी देवता माना और पूजा जाता है। क्या अभी वह समय नहीं आया जब हम अपनी मातृभूमि को देवी मानें और इसका प्रत्येक परमाणु हमारे मन में सम्पूर्ण देश के प्रति देश-भक्ति उत्पन्न कर दे ? जब प्राण-प्रतिष्ठा करके हिन्दू लोग दुर्गा की प्रतिमा को साक्षात् शक्ति मान लेते हैं तो क्या यह ठीक नहीं कि हम अपनी मातृ-भूमि की महिमा को प्रकाशित

करें और भारत रूपी सच्ची दुर्गा में जीवन और प्राण की प्रतिष्ठा करें ? आओ पहले हम अपने हृदयों को एक करें, फिर हमारे शिर और हाथ अपने आप मिल जायँगे ।

संसार के महापुरुष योगिराज श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि "मनुष्य अपनी श्रद्धा और विश्वास का पुतला है । जैसा जिसका विश्वास होता है, वैसा ही वह हो जाता है ।"

अय प्यारे धर्मनिष्ठ भारतवासियो ! शास्त्रों को ठीक-ठीक बर्ताव में लाओ । देश का आपद्धर्म तुमसे यह कह रहा है कि जाति-पाँति की कड़ी जंजीरों को कुछ ढीला करके इन उग्र भेद-भावों को राष्ट्रीय भावना के अधीन कर दो । क्या तुम नहीं देखते कि जिस भारत ने सारे संसार के भगोड़ों को अपने यहाँ शरण दी, और संसार की विभिन्न जातियों का पेट पाला, वही भारत आज अपने प्यारे पुत्रों को सूखी रोटी देने में अशक्त हो रहा है ? प्रत्येक मनुष्य को अपनी उचित स्थिति प्राप्त करने के लिए पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए । हमारे शिर चाहे जितने ऊँचे रहें, किन्तु पैर सबके समतल भूमि पर ही रहने चाहिएँ । कभी किसी के कन्धों और गर्दनों पर पैर धरने की इच्छा न करो, चाहे वह कितना ही कमज़ोर क्यों न हों, अथवा स्वयं इसके लिए राज़ी ही क्यों न हो ।

भारतवर्ष का पतन वेदान्त के अभाव से हुआ ।

× × ×

वेदान्त हमें शक्ति और बल प्रदान करता है, न कि कमजोरी और शिथिलता ।

× × ×

वेदान्त रसायन-विद्या के समान प्रयोगात्मक विज्ञान है ।

—स्वामी रामतीर्थ

३. ब्रह्मचर्य*

सुखी जीवन बहुत बड़ी देन है। पाश्चात्य सभ्यता के आवरण में आकर हम भौतिक वाद की ओर बहुत आकर्षित होते जा रहे हैं और अपने ऋषि-मुनियों के बताये हुये सूत्रों को भूलते से जा रहे हैं। आज आप को चारों ओर आडम्बर-मय जीवन दिखाई देगा, प्रतीत ऐसा होता है मानो पहले से अधिक सुविधायें प्राप्त होती जा रही हैं, किन्तु अपने मानस को टटोल कर देखिये कि क्या हमारा जीवन वास्तव में सुखी है? क्या हमारे शरीर वास्तव में स्वस्थ हैं? शायद ही ५ प्रतिशत व्यक्ति आपको मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त नजर आयेंगे। क्या इसको हमने ठंडे दिमाग से सोचा है, कि इस नैतिक कमजोरी का क्या कारण है? कारण साफ है कि हमने "ब्रह्मचर्य" को जो हमारे ऋषियों ने आदि काल से एक अद्वैत कवच बताया है उसका "परित्याग" कर दिया है। आज तक जितनी भी महान् विभूतियाँ हुई हैं, वे सब ब्रह्मचर्य रूपी कवच पहन कर ही नैतिक-उत्थान के उच्च शिखर पर पहुँच सके हैं। स्वामी राम ब्रह्मचर्य के कितने हामी थे, यह उनके ६ सितम्बर १९०५ को फैजाबाद में दि` व्याख्यान से मालूम पड़ेगा। —सम्पादिका

जे नर राम-नाम लिव नाहीं,
ते नर खर-कूकर-शूकर-सम, वृथा जियें जग मांहीं।

× × × ×

तुझे देखा तो फिर औरों को किस आँखों से हम देखें।
ये आँखें फूट जायें गर्चे इन आँखों से हम देखें।
ओ३म् ओ३म् ओ३म्

---

*ता० ६ दिसम्बर १९०५ ई० को फैज़ाबाद में दिया हुआ व्याख्यान।

जीता तो वही है, जो सत् में, नारायण में, राम में, रहता-सहता चलता-फिरता और श्वास लेता है। जिन्दगी तो वही है। आप कहेंगे कि तुम बस आनन्द ही आनन्द बोलते हो, संसार के काम-काज कैसे होंगे और दुख-दर्द कैसे मिटेंगे ? यदि इस अनिश्चित आनन्द की तलाश में लग पड़े ?

परन्तु—

हरजा कि सुल्तां खीमा ज़द गौग़ा न मानद आम रा

अर्थ—जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा डाला, वहाँ साधारण लोगों का गुल-गपाड़ा न रहा।

जहाँ पर सत्य, प्रेम और नारायण का निवास है, वहाँ शोक, मोह, दुःख, दर्द आदि का क्या काम ? क्या राजा के खेमे के सामने कोई लुण्डी-बुच्ची फटक सकती है ? सूर्य जिस समय उदय हो जाता है, तो कोई भी सोया नहीं रहता। पशुओं की भी आँखें खुल जाती है, नदियाँ जो बर्फ़ की चादरें ओढ़े पड़ी थीं, उन चादरों को फेंककर चल पड़ती हैं। इसी प्रकार सूर्यों का सूर्य आत्मदेव जब आपके हृदय में निवास करता हैं, तो वहाँ शोक, मोह और दुःख कैसे ठहर सकते हैं ? कभी नहीं !! कदापि नहीं!!! दीपकजल पड़ने से पतंगे आप-ही-आप उसके आस-पास आने शुरू हो जाते हैं। चश्मा जहाँ वह निकलता हैं, प्यास बुझाने वाले वहाँ स्वयं जाने लग पड़ते हैं। फूल जहाँ खिल पड़ा, भौंरे आप-ही-आप उधर खिचकर चले जाते हैं। इसी प्रकार जिस देश में धर्म (ईश्वर का नाम) रोशन हो जाता है, तो संसार के सर्वोत्तम पदार्थ, वैभव आप ही खिंचे हुए उस देश में चले जाते हैं। यही कुदरत का कानून है, यही प्रकृति का नियम है। ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

बेशक, राम को आनन्द के अतिरिक्त और बात नहीं आती। बादशाह का खीमा लग जाने पर जैसे चोर-चकोर नहीं आने पाते, इसी तरह आनन्द का डेरा जम जाने से शोक और दुःख ठहर नहीं

सकते। इसलिए आनन्द के सिवा राम के मुँह से और क्या निकले? ओ३म्! ओ३म्!! आनन्द! आनन्द!!

लेकिन आनन्द का डेरा डालने से पहले जमीन का साफ़ कर लेना भी ज़रूरी है। इसलिए आज राम, जिसके यहाँ आनन्द की बादशाहत के सिवा कुछ और है ही नहीं, झाड़ू लेकर झाड़ने-बुहारने का काम कर रहा है, जिस तरह दूध या किसी और अच्छी चीज़ को रखने के लिए बरतन का साफ़ कर लेना जरूरी है, इसी तरह आनन्द को हृदय में रखने के लिए हृदय का साफ़ कर लेना भी आवश्यक है। सो आज राम इस सफाई का बल बतायेगा। लोग कहते हैं कि घी खाने से शक्ति आती है, मगर जब तक ज्वर दूर न हो जाय, घी हानिकारक ही है। कड़वी कुनैन या चिरायता खाये बिना ज्वर दूर न होगा अर्थात् जब तक मन पवित्र और शुद्ध न होगा, ज्ञान का रंग कदापि न चढ़ेगा।

औरा ब चश्मे-पाक तवां दीद चूं हिलाल?
हर दीदा जल्दगाहे आँ माह पारा नैस्त।

यदि बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य आध्यात्मिक प्रयोग नहीं करता तो वह वेदान्त के विषय में कुछ नहीं जान सकता।

× × ×

जंगलों में वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करके साधक को संसार में आकर काम करना चाहिए और उसे अपने दैनिक जीवन में उतारना चाहिए।

× × ×

वेदान्त निराशावाद नहीं है, वह तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

—स्वामी रामतीर्थ

४. भारत की महिलाएँ

रथ के दो पहिये होते हैं। इसी प्रकार संसार-रूपी रथ के भी पहिये स्त्री और पुरुष हैं। मानव का जन्म तो प्रकृति के अनुसार होता है। किन्तु उसका निर्माण करने में नारी का ही अधिक हाथ है।

नारी निन्दा मत करो,
नारी नर की खान।
नारी तैं नर ऊपजैं,
ध्रुव प्रहलाद समान॥

पुरुष नारी का ही आश्रय लेकर सफलता को प्राप्त कर सकता है, पिता, भाई, पति तथा पुत्र के रूप में। माता के आशीर्वाद के बगैर मानव एक पग आगे नहीं चल सकता; बहिन की श्रद्धा उसका सही अर्थ में रक्षा-कवच का काम करती है; पत्नी का प्रेम पुरुष को प्रेरणा देता है, और पुत्री सब परिवार की मंगल कामना करती है। स्वामी राम ने नारी को प्रेम का प्रतीक कहा है। और उनसे बहुत अपेक्षा रक्खी है।

—सम्पादिका

जिससे हम प्रेम करते हैं, उसके लिए जीवन समर्पण करना कितने बड़े सौभाग्य की बात है?

प्रेम केवल वही कर सकता है, जो अपने प्रेम-पात्र के लिए प्राण अर्पण करने को निरन्तर प्रसन्न-चित्त होकर तैयार रहता है। ऐसा प्रेम ही मनुष्य को जीवित रखता है और उससे महान् सेवा करा लेता है। ऐसे प्रेम की ही भारतवर्ष को आवश्यकता है। भारतवर्ष में कार्य करने के लिए जानेवाले अमेरिकन स्त्री-पुरुषों को ऐसा ही प्रेम रखना चाहिए।*

---

* यह व्याख्यान स्वामी राम ने अमेरिका में दिया था।

बहुत से झूठे समाचार यहाँ के उन मनुष्यों द्वारा फैलाये गये हैं जो आजकल भारत में रहते हैं, परन्तु भारतीय जीवन से अनभिज्ञ हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे तुम एक पुस्तक को मोमजामे में लपेटकर पानी में डुबो देते हो, परन्तु पुस्तक के चारों ओर पानी होते हुए भी वह भीगती नहीं। ऐसे विदेशी मनुष्य भारत में रहते हुए भी भारतवासियों से नहीं मिलते और न उनसे एक होते हैं। इसी बात की वह स्त्री, जो भारत में भारतीय रीति से रही है, साक्षी दे रही है। राम चाहता है कि इसी स्त्री के सदृश अमेरिका-वासी भारतीयों से मिलें। यदि तुम सच्चे कार्यकर्ता बनकर जाओगे, तो तुम्हें अपनी जेब से एक पाई भी खर्च न करना पड़ेगा। वहाँ लोग लाखों मनुष्यों का पालन-पोषण कर रहे हैं, वहाँ के लोग निर्धन होते हुए भी अत्यन्त उदार हैं।

राम ने भारतवर्ष के साधुओं के पास कभी धन नहीं देखा; जब वे गलियों में जाते हैं, तब सर्वदा यही समझा जाता है कि वे अपनी क्षुधा निवृत्ति के लिए कुछ भिक्षा माँग रहे हैं। प्रत्येक भारत-रमणी अपना यह ईश्वरप्रेरित कर्त्तव्य समझती है कि भूखों को भोजन दे और उन मोहताजों की आवश्यकताओं को जो उसके घर के सामने से निकलते हैं, पूरा करे। यदि कोई साधु एक ऐसी स्त्री के घर के सामने से निकले जिसके पास भूखे की भूख मिटाने के लिए कुछ भी नहीं है तो ऐसी अवस्था में उसके दिल पर क्या गुज़रती है, यह राम ही जानता है। निर्धन साधु को देने के लिए जब उस के पास अन्न न होगा, तब उसके नेत्रों से करुणा-जनक अश्रु-प्रवाह बह निकलेगा। दरिद्र या भूखे मनुष्य के से वस्त्र पहने हुए जो कोई व्यक्ति सड़क से निकलता है, तो वह साधु के समान समझा जाता है। साधु का अर्थ स्वामी ही नहीं है। यदि तुम भारत में हो और भूखे हो तो तुम्हारा आदर साधु के समान होगा। जिस किसी के पास द्रव्य अथवा वस्त्र नहीं है, वह साधु ही के समान माना जाता है।

अमेरिका और इंगलैंड में बहुधा कहा जाता है कि भारत में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता और पति उनके साथ उचित प्रेम नहीं करते। यह बहुत ही असत्य विचार है, क्योंकि भारत में इस देश की अपेक्षा स्त्री का अधिक सम्मान और प्रेम होता है, चुम्बन होता है, लाड़-प्यार होता है। भारत में सर्व-साधारण के समक्ष पति स्त्री का आदर-सत्कार बहुत ही कम अथवा कुछ भी नहीं करता, परन्तु हृदय से वह उसे अत्यन्त प्यार करता है, उसका आदर करता है।

अमेरिका में स्त्री का सर्व-साधारण के समक्ष व्यवहार अकेले की अपेक्षा अधिक महत्त्व का समझा जाता है, परन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है। वहाँ पति सर्व-साधारण के सामने स्त्री की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देता, परन्तु अपने-अपने स्वभावानुसार स्त्री के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार रहता है। वह उसके सुख के लिए सब कुछ सह सकता है। अन्तर केवल इस बात में है कि भारत की स्त्रियाँ पुरुष के समान शिक्षिता नहीं हैं। तथापि क्या इस देश में स्त्रियाँ उतनी ही शिक्षिता हैं, जितने कि पुरुष? भारत में न तो पुरुष ही इतने शिक्षित हैं जितने कि यहाँ हैं और न स्त्रियाँ ही।

आजकल सब दोष भारतवर्ष के विवाह सम्बन्ध के मत्थे मढ़ा जा रहा है, परन्तु यह ठीक नहीं। इस प्रश्न का यह यथार्थ निराकरण नहीं है।

भारत में पुरुष अपनी पत्नी को मेरी स्त्री कहने की धृष्टता नहीं कर सकता। वह अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कुछ कहता हो, 'मेरी स्त्री' कहकर बात नहीं करता। इस प्रकार के शब्द वहाँ अश्लील, असभ्य और निर्लज्ज समझे जाते हैं। भारत में पुरुष इन शब्दों का कभी प्रयोग नहीं करता। जब वह अपनी स्त्री से या उसके सम्बन्ध में कुछ कहता है, तो उसे अपने लड़के की माँ ऐसे पर्याय नाम से पुकारता है, जैसे 'कृष्ण की माँ", "राम की माँ" इत्यादि।

भारतवर्ष में यह कानून है कि प्लेग के रोगी के पास किसी घर के आदमी को जाने की आज्ञा नहीं दी जाती। एक प्लेग की झोपड़ी में प्लेग से बीमार एक लड़का था। इस बालक को अस्पताल में ले गये थे। उस झोपड़ी में जहाँ वह प्लेग का रोगी लड़का था, एक भद्र महिला गयी और किसी प्रकार उसने उसमें प्रवेश किया। वह वहाँ धाय के बहाने रहने और उस प्लेग के बीमार लड़के की सेवा करने लगी। अन्त में बालक की माँ को (जो वही महिला थी) आने की आज्ञा मिली और वह प्रिय बालक अपनी माता के चरणों पर शिर रख कर पड़े-पड़े प्राण त्याग रहा था। हिन्दू-धर्म के अनुसार यह मृत्यु वैसी ही पुण्यमयी परिस्थिति में हो रही थी, जैसे एक ईसाई ईसा के चरणों पर अपना मस्तक रखकर मृत्यु प्राप्त करता है। जब भारत का एक बालक अपनी माता के चरणों पर शिर रखकर प्राण त्याग करता है, तब वह मृत्यु परम पवित्र मानी जाती है।

इस देश में तुम परमेश्वर को पिता के समान पूजते हो, जो "पिता स्वर्ग में है।" भारत में परमेश्वर को पिता के समान ही नहीं किन्तु माता के समान भी पूजा होती है। भारत की भाषा में माता का शब्द सबसे प्यारा शब्द है। माता जी से तात्पर्य अत्यन्त पवित्र तथा अत्यन्त प्यारे ईश्वर से है।

जब भारतवर्ष में कोई बीमार होता है, अथवा कोई महान् दुःख उसके शिर पर आ जाता है, तब उस समय उसके मुख से "मेरे ईश्वर" शध्द नहीं, किन्तु "माँ" का शब्द ही निकलता है। यह वह शब्द है, जो एक हिन्दू के हृदय-प्रदेश से निकलता है। हिन्दू के अन्तः करण की पवित्र भावना "माँ" का परिधान ओढ़ कर बाहर फूट पड़ती है।

---

५. विद्यार्थियों से

आज चारों ओर एक नया नारा सुनाई दे रहा है। श्रम-दान, विद्या-दान, ज्ञान-दान, आदि। कौन दान देने वाला है और कौन लेने वाला है, यह एक सोचने की बात है। सब बातें बचपन में ही सीखी जाती है। बचपन में ही विद्या-अध्ययन के लिए बच्चा, शाला या आश्रम में भेजा जाता है। प्राचीन काल में शिक्षा प्रणाली ही और थी अर्थात् ऋषियों के आश्रम में ग़रीब और राजाओं के राजकुमार भी समान रूप से विद्या उपार्जन करते थे। उनको बौद्धिक-श्रम के अतिरिक्त जब शरीर-श्रम करने को भी समान रूप से दीक्षा दी जाती थी, तो उनको राज्य-वैभव होते हुए भी परिश्रम करने से संकोच नहीं होता था। इसके फल-स्वरूप उनका जीवन सुखमय बीतता था। आज पहले से कहीं अधिक शालाएँ हैं, कहीं अधिक शिक्षा का प्रचार है, किन्तु हमारे बच्चे शिक्षा प्राप्त करके रोटी कमाने के लिए दर-दर के भिखारी बने हुए हैं। वास्तव में विद्यावान तो हर जगह मान पाता है और धनवान अपनी-अपनी नगरी में ही। किन्तु थोड़ा हम सोचें कि यह क्या कारण है कि शिक्षा का फल इतना विपरीत हो रहा है। जरा ग़ौर से देखने के बाद समझ में आता है कि आज का शिक्षार्थी केवल किताबी ज्ञान ही लेकर ऊँची-ऊँची डिगरियाँ लेता है। अनुभव के नाम पर बिल्कुल कोरा है। इसका यही कारण समझ में आता है कि आज का विद्यार्थी-जीवन शारीरिक परिश्रम से बिल्कुल शून्य है। सन्त विनोबा आज उसी का भेद दुनियाँ को बता कर भटके हुए लोगों को "परिश्रम" रूपी भगवान के पास लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। स्वामी राम ने भी इसको बहुत महत्ता दी थी और उन्होंने ऊँचे स्वर से "परिश्रम में संकोच नहीं करना चाहिये" इसका अनुमोदन किया था।

—संपादिका

परिश्रम में संकोच नहीं

जिस समय मैं जापान से अमेरिका को जा रहा था, जहाज़ में कोई डेढ़ सौ जापानी विद्यार्थी थे, जिनमें कुछ अमीरों के घराने के भी थे। पर उनमें शायद ही कोई ऐसा था, जो अपने घर से रुपया ले चला हो। अधिकांश उनमें ऐसे थे कि जहाज़ का किराया भी उन्होंने घर से नहीं दिया था। कोई उनमें से धनाढ्य यात्रियों के बूट साफ़ करने पर, कोई ऐसे ही अन्य छोटे कामों पर नौकर हो गये थे, और जहाज़ का खर्च इस प्रकार पूरा कर रहे थे। पूछने से उनका यह विचार पाया गया कि अपने राष्ट्र का धन विदेशों में जाकर क्यों खर्च करें? जहाज़ का किराया भी जहाज का काम करके देते थे। अमेरिका में जाकर इनमें से कुछ विद्यार्थी तो अमीरों के घरों में दिन भर मेहनत-मज़दूरी करते थे, और रात को नाइट-स्कूलों में पढ़ते थे, और कुछ रेल की सड़क पर या बाज़ारों में रोड़ी कूटने पर या किसी और काम पर लग गये थे। ये लोग गरमियों में मज़दूरी करते थे और जाड़ों में कालेज की शिक्षा पाते थे।

पये इल्म चूँ शमश्र बायद गुदाश्त

अर्थात् विद्या के लिए मोमबत्ती की भाँति पिघलना चाहिए।

इसी प्रकार सात-आठ वर्ष रहकर अपने दिमाग को अमेरिका की विद्या तथा कला-कौशल से और अपनी जेबों को अमेरिका के रुपये से भरकर ये जापानी विद्यार्थी अपने देश में वापस आते हैं। प्रत्येक जहाज़ में बीसियों और कई बार सैकड़ों जापानी अमेरिका इत्यादि को जाते रहते हैं, हज़ारों बल्कि लाखों जापानी प्रतिवर्ष जहाजों में जर्मनी व अमेरिका जाकर वहाँ से विद्या प्राप्त करके वापस आते हैं। इसका परिणाम आप देख ही रहे हैं। पचास वर्ष हुए, जापान भारतवर्ष से भी नीचा था। आज वह योरोप से भी बढ़ गया है। यदि तुम्हारा हाथ खूब गोरा-चिट्टा है और उसका रुधिर बिल्कुल साफ़ है अगर कलाई पर पट्टी

बाँध दोगे, तो हाथ और रुधिर हाथ ही में रहेगा, शरीर के और भागों में नहीं जायगा, किन्तु गन्दा हो जायगा और हाथ सूख जायगा। इसी प्रकार जिन देशों ने यह कहा कि हम ही उत्तम हैं, हम ही अच्छे हैं, हम ही बड़े हैं हम म्लेच्छों या काफ़िरों से क्यों सम्बन्ध रक्खें, और इस प्रकार जिन्होंने अपने आप को अलग-अलग कर लिया, उन्होंने अपने शरीर पर मानों पट्टी बाँध कर अपने तईं सुखा लिया। प्रसिद्ध कहावत है—

बहता पानी निरमला, खड़ा तो गन्दा होय
आबे-दरिया बहे तो बेहतर, इन्साँ रवाँ रहे तो बेहतर।

अर्थात् नदी का जल बहता रहे, तो अच्छा और मनुष्य चलता रहे, तो उत्तम।

यदि विचार से देखा जाय, तो मालूम होगा कि जिन देशों ने उन्नति की है, चलते ही रहने से की है। अमेरिका के लोगों की स्थिति इस विषय में देखिए। औसतन् ४५००० अमेरिकन प्रतिदिन पैरिस में रहते हैं, झुण्ड-के-झुण्ड आते हैं और जाते हैं कोई ज़रा-सा नवीन आविष्कार या नई चीज़ फ्रांस में देखी, तो झट अपने देश में पहुँचा दी। प्राचीन विद्याओं और कला-कौशलों के सीखने में कोई कमी नहीं। हर "सैलानीं-सीज़न" अर्थात् शरद् ऋतु में लगभग ८०,००० अमेरिकन मिस्र में आते-जाते हैं, मीनारों को देखते हैं। ४० फीसदी अमेरिकन सारी दुनियाँ घूम चुके हैं। इस तरह ये लोग जहाँ विद्या होती है, वहाँ से लाकर अपने देश में पहुँचा देते हैं। जर्मनीवालों की भी यही दशा है।

अमेरिका से आते समय "राम" जर्मन जहाज़ पर सवार था। उसमें लगभग तीन सौ मनुष्य फ़र्स्ट क्लास के यात्री होंगे। उनमें प्रोफेसर, ड्यूक, बैरन, और सौदागर लोग शामिल थे। दिन के समय

साधारणतः "राम" जहाज़ की सब से ऊँची छत पर जाकर बैठता था, एकान्त में पढ़ता-लिखता था या ध्यान-विचार में लग जाता था, किन्तु जर्मन लोग जहाज़ के ऊपर छत पर चढ़कर "राम" को नीचे लाते थे और "राम" के व्याख्यान कराते थे। "राम" को विदेशी समझकर उसके साथ काफ़िर या म्लेच्छ का सा बर्ताव न था, इसके विपरीत उनका यह ख़याल था कि जितना भी ज्ञान इस विदेशी से मिल सकता है, लेलें।

संयुक्त-राज्य अमेरिका में सब से पहला नगर जो राम ने देखा, वह वाशिंगटन है। वहाँ वाशिंगटन यूनिवर्सिटी ने "राम" को हिन्दू दर्शन-शास्त्र पर व्याख्यान देने का निमन्त्रण दिया। व्याख्यान के बाद एक युवक प्रोफ़ेसर से मिलना हुआ, जो अभी-अभी जर्मनी से वापस आया था। राम ने पूछा—"जर्मनी क्यों गये थे ?" उसने जवाब दिया—वनस्पति-शास्त्र और रसायन-शास्त्र में अपनी यूनिवर्सिटी की जर्मन यूनिवर्सिटियों से तुलना करने गया था।" और साधारण रीति से उसने इसका परिणाम यह सुनाया कि दस वर्ष का समय हुआ, जर्मनी हम से बढ़कर था, किन्तु आज हम उससे कम नहीं है।

"पीर शो बियामोज़" अर्थात् वृद्धावस्था पर्यन्त पढ़ते ही जाओ। यही उनका सिद्धान्त है। जान-तोड़ परिश्रम के साथ विदेशियों से सीख-सीखकर उन लोगों ने विद्या को पाया और बढ़ाया है।

यह विचार ठीक नहीं कि अमेरिका के लोग डॉलर (रुपया) के दास हैं, बल्कि विद्या के पीछे डॉलर स्वयं आता है। जो लोग अमेरिका वालों पर कलंक लगाते हैं कि उसका धर्म नक़द धर्म नहीं, बल्कि "नक़दी" धर्म है, वे या तो अमेरिका की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं, या नितान्त अन्यायी हैं, और उन पर यह कहावत ठीक बैठती है कि "अंगूर अभी कच्चे हैं, कौन दाँत खट्टे करे।"

केलिफ़ोर्निया में एक स्त्री ने अठारह करोड़ रुपया देकर एक विश्व-विद्यालय स्थापित किया। इसी प्रकार विद्या के बढ़ाने-फैलाने के लिए

प्रतिवर्ष करोड़ों का दान दिया जाता है। भारतवर्ष की ब्रह्मविद्या का वहाँ इतना सम्मान है कि जैसा वेदान्त अमेरिका में है, वैसा व्यावहारिक वेदान्त भारतवर्ष में भी आजकल नहीं हैं। उन लोगों ने यद्यपि हमारे वेदान्त को पचा लिया है और अपने शरीर और अन्तःकरण में खपा लिया है, किन्तु वे हिन्दू नहीं बन गये।

यदि आप वेदान्त का साक्षात् कर लेते हैं तो नरक भी आपके लिए स्वर्ग बन जायगा। जीवन सचमुच जीने योग्य होगा, कभी कोई चिन्ता, कोई परेशानी नहीं हो सकेगी। चित्त सदैव एकाग्र, प्रसन्न, तत्पर और प्रफुल्ल रहेगा।

× × ×

तुम परम निर्गुण सत्य हो, जिसमें यह समस्त संसार, समस्त ब्रह्मांड केवल लहरों या भँवरों के समान है। उस सत्य का साक्षात् करो और स्वतंत्र हो जाओ। सर्वथा मुक्त !!!

× × ×

राम आपको स्वतंत्रता, विचार-स्वतंत्रता, कार्य-स्वतंत्रता प्रदान करता है। आपको बन्धन-मुक्त करता है।

× × ×

अपनें विश्वासों के पीछे मरने की अपेक्षा उनके लिए जीवित रहना कठिन है।

× × ×

यदि दर्शन-शास्त्र का लक्ष्य यह हो कि हम शान्ति-पूर्वक मृत्यु का आलिंगन कर सकें तो उसके लिए वेदान्त दर्शन के अध्ययन से बढ़कर और कोई तैयारी नहीं हो सकती।

—स्वामी रामतीर्थ

६. नकद धर्म

भारत एक था किन्तु उसका विभाजन हुआ, क्यों ? धर्म के आधार पर। यह इसलाम और हिन्दूवाद की संकीर्ण भावना समझ में नहीं आती। यह भिन्नता क्यों ? जबकि सबके शरीर एक ही भूमि पर पैदा हुए और पले। सबके धर्मों में आदर्श वही है, फिर यह सोचने की शैली में भिन्नता क्यों ? भारत और अमेरिका में क्या भेद है ? जापान तो बिल्कुल उसके पड़ौस में ही बसा है। चीन जुड़ा हुआ पड़ौसी है और अफगानिस्तान आदि देश उसके साथ एक ही लाइन में बसे हैं। फिर प्रत्येक देश के मानवों में धर्म के आधार पर भिन्नता क्यों ? क्योंकि हम अपने आप को धोखा देते हैं। जैसे हम किसी को बड़ी रकम उधार दे देते हैं, परन्तु समय आने पर वह हमारे काम नहीं आ सकती यद्यपि हम उस रकम के मालिक होते हैं, क्योंकि उधार दे देते हैं, और इसी कारण हम उसका लाभ नहीं उठा सकते। इसी प्रकार हमने जो धर्म अपनाया है "उधार धर्म" इसे छोड़कर यदि हम नकद धर्म को अपनाएँ तो चारों ओर मानवता का साम्राज्य छा जाय। स्वामी राम ने उसी नकद धर्म के लिए वकालत की है। —सम्पादिका

भारतवर्ष और अमेरिका में क्या भेद है ? यहाँ दिन है, तो वहाँ रात है ; वहाँ दिन है, तो यहाँ रात है। जिन दिनों हिन्दुस्तान का सितारा ऊँचा था, अमेरिका को कोई जानता भी न था। आज अमेरिका उन्नति पर है, तो भारतवर्ष की कोई पूछ नहीं। हिन्दुस्तान में बाजार आदि में रास्ता बाईं ओर चलते हैं, वहाँ दाईं ओर; पूजा और सत्कार के समय यहाँ जूता उतारते हैं, वहाँ टोपी; यहाँ घरों में राज्य पुरुषों का है, वहाँ स्त्रियों का; इस देश में यह शिकायत है कि यहाँ विधवा ही विधवा हैं, उस देश में कुमारी ही कुमारी अधिक हैं; हम कहते हैं,

"पुस्तक मेज़ पर है" वे कहते हैं पुस्तक पर मेज़ है; हिन्दुस्तान में गधा और उल्लू की मिसाल युद्ध के लिए काम में लाई जाती है, वहाँ गधा और उल्लू भलाई और बुद्धिमत्ता के चिन्ह हैं; इस देश में जो पुस्तक लिखी जाती है, वह जब तक आधी के लगभग पहले के विद्वानों के प्रमाणों से न भरी हो, उसका कुछ सम्मान नहीं होता, उस देश में पुस्तक की सारी बातें नवीन न हों तो उसकी कोई कद्र ही नहीं। यहाँ किसी को कोई लाभदायक बात मालूम हो जाय, तो उसे छिपाकर रखते हैं, वहाँ उसे छापेखानों द्वारा प्रकाशित कर देते हैं; यहाँ अधर्म की, रूढ़ियों की उपासना अधिक है, वहाँ नकद धर्म बहुत है। हमारे यहाँ इस बात में बड़ाई है कि औरों से न मिलें, अपने ही हाथ से पका कर खायँ और सबसे अलग रहें, वहाँ पर जितना औरों से मिले उतनी ही बढ़ाई है। यहाँ पर अन्य देशों की भाषा पढ़ना दोष-पूर्ण समझा जाता है। ("न पठेत् यावनी भाषाम्"), वहाँ जितना अन्य देशों की भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उतना हा अधिक सम्मान होता है।

जब राम जापान को जा रहा था, तो जहाज़ पर अमेरिका का एक वयोवृद्ध प्रोफ़ेसर मित्र बन गया। वह रूसी-भाषा पढ़ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि ग्यारह भाषाएँ वह पहले से जानता है। उससे पूछा गया "इस आयु में यह नवीन भाषा क्यों सीखते हो ?" उसने उत्तर दिया—"मैं भूगर्भ-शास्त्र का प्रोफ़ेसर हूँ। रूसी-भाषा में भूगर्भ-शास्त्र की एक अनोखी पुस्तक लिखी गयी है, यदि मैं उसका अनुवाद कर सकूंगा, तो मेरे देश-वासियों को अत्यन्त लाभ पहुँचेगा, इसलिए रूसी भाषा पढ़ता हूँ।" राम ने कहा—अब तुम मौत के निकट हो, अब क्या पढ़ते हो ? अब ईश्वर-सेवा करो, तर्जुमा करने में क्या धरा है ?" उसने उत्तर दिया—"लोक-सेवा ही ईश्वर-सेवा है—

बंदा हूँ, बाखुदा मैं, बंदे मेरे खुदा हैं।

इसके साथ यदि वह भी मान लिया जाय कि इस काम को करते-करते मुझे नरक में जाना पड़े, तो मैं जाऊँगा, इसकी कुछ परवाह नहीं। अगर मुझे घोर नरक के दुःख मिलते हैं, तो हज़ार जान से भी कबूल है, यदि मेरे देश-भाइयों को सुख और लाभ मिल जाय। इस जीवन में सेवा के आनन्द का अधिकार मैं मौत के उस पार के डर से नहीं छोड़ सकता।"

गुज़श्ता ख्वाबो आयन्दा खयालस्त,
ग़नीमत दां हमीं दम रा कि हालस्त।

भावार्थ—भूत-काल स्वप्न है, और भविष्य-काल अनुमान हैं, और वह समय जो वर्तमान है, उसे ग़नीमत समझो।

यही नक़द धर्म है। भगवद्गीता ने बड़ी सुन्दरता से आज्ञा दी है कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (२,४७)

कर्म तो करते ही जाओ, परन्तु फल पर दृष्टि मत रक्खो।

लार्ड मेकॉले की प्रार्थना थी कि मैं मरूं तो पुस्तकालय में मरूं। और मेरी यह आर्ज़ू है कि मैं मरूं, तो प्यारे की गली ही में मरूं।

दफ़न करना मुझको कूंए-यार में,
क़ब्र बुलबुल की बने गुलज़ार में।

भावार्थ—मेरे प्यारे की गली में मुझे गाड़ना, क्योंकि बुलबुल पक्षी की समाधि के लिए बाग़ ही उपयुक्त स्थान है।

मरें तो कर्त्तव्य-पालन करते-करते मरें, युद्ध क्षेत्र में मरें। हिम्मत, आनन्द और उत्साह के साथ प्राण त्याग करें।

एक मनुष्य बाग़ लगाता था। किसी ने पूछा—"बड़े मियाँ, क्या करते हो? तुम क्या इसके फल खाओगे? एक पाँव तो तुम्हारा मानो पहले ही कब्र में है। क्या तुमको फ़कीर की वह बात याद नहीं है—

घर बनाऊं खाक इस दहशत-कदा में नासिहा,
आये जब मज़दूर, मुझको ग़ोर-कन याद आ गया ।

भावार्थ—अय उपदेशक, इस भयंकर संसार में क्या ख़ाक का घर बनाऊं ? जब मज़दूर आये, तो मुझे कब्र खोदने वाले याद आगये ।

माली ने उत्तर दिया—"औरों ने बोया था, हमने खाया, हम बोयेंगे, दूसरे खायेंगे ।" इसी प्रकार संसार का काम चलता है । जितने महापुरुष हो गये हैं, ईसा, मुहम्मद इत्यादि, क्या इन महापुरुषों ने उन वृक्षों का फल स्वयं खाया था, जो वे बो गये ? कदापि नहीं । इन महापुरुषों ने तो केवल अपने शरीरों को मानो खाद बना दिया, फल कहाँ खाये ? जिन वृक्षों का फल शताब्दियों के बाद लोग आज खा रहे हैं, वे उन ऋषियों की ख़ाक से उत्पन्न हुए हैं, यह सिद्धान्त ही धर्म का वास्तविक कारण है । यही नियम उस प्रोफ़ेसर के आचरण में पाया गया, जो रूसी-भाषा पढ़ता था ।

कोई मनुष्य उस समय तक सर्वरूप परमात्मा के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारने लगे ।

× × ×

यह अनुभव करके कि सारा भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है, प्रत्येक भारत-सपूत को सम्पूर्ण भारत की सेवा में रहना चाहिए ।

× × ×

व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को किसी प्रकार राष्ट्रीय धर्म से ऊँचा स्थान न देना चाहिए, इनके यथोचित सामंजस्य से ही सुख मिल सकता है ।

७. एकता

ज़बान बोलती है, और कान सुनते हैं, ऐसा कहा करते हैं। परन्तु ज़बान में बोलने की शक्ति कहाँ से आई, और कान में सुनने की ताक़त कहाँ से आई? एक ही रूह है, एक ही आत्मा है, जो कान और ज़बान को शक्ति देता है। कान को सुनने की शक्ति देता है, तो ज़बान को बोलने की शक्ति देता है। आप लोग चाहे मानो चाहे न मानो, किन्तु इस समय राम जो बोल रहा है, तो राम में बोलने वाला और आप में सुनने वाला वास्तव में एक ही है। जैसे ज़बान और कान में एक ही शक्ति है, इसी तरह बोलने वाले और सुनने वाले शरीर में एक ही शक्ति है। वही बोल रही है, वही सुन रही है।

एक ही गाता हूँ मैं अपने सुनाने के लिए,
कोई समझे या न समझे, नहीं कुछ परवा मुझे।

यह व्याख्यान नहीं है, बल्कि जैसे कोई अपने मन में आप ही विचार करता है, उसी तरह बोला जा रहा है। और इसको आप इस भाव के साथ सुनियेगा मानो आप स्वयं अपने मन में विचार कर रहे हैं और आप ही व्याख्यान दे रहे हैं। व्याख्यान आरम्भ होने से पहले आप इस ध्यान में लीन हो जायें कि "इन समस्त देहों में एक ही वहदत है। परमेश्वर कह दो, खुदा कह दो, आत्मा कह दो; एक ही अद्वैत है, जो इन सारे शरीरों में इस तरह व्याप रहा है, जैसे माला के दानों में धागा पिरोया रहता है।"

एकता और वहदत के बारे में हम सुनते और पढ़ते चले आये हैं, परन्तु आनन्द-लाभ तब हो सकता है जब कि हमको इसका प्रत्यक्ष दर्शन (नजरी सबूत) मिले। जब वह प्रत्यक्ष सामने नज़र आने लग जाय। यह वहदत यानी एकता एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक

नियम है। बल्कि सारी प्रकृति की जान वहदत है। जो राष्ट्र इस एकता को अपने आचरण में लाकर चले हैं, उनका बोलबाला होता है। जो मनुष्य इसे प्रत्यक्ष व्यवहार में लाता है, वही उन्नति को प्राप्त होता है। इस प्राकृतिक नियम को जो तोड़ता है, वह वैसा ही दुःख पावेगा, जैसे आकर्षण के नियम को तोड़ने वाला पाता है। जो मनुष्य आग को छूता है, वह जले बिना नहीं बच सकता। इसी तरह जो इस प्राकृतिक नियम को तोड़ेगा, अपने आपको तोड़ेगा।

कहते हैं कि जिस समय अयोध्या से राम के साथ सीता जी को वनवास दिया गया, तो अयोध्या की यह दशा हो गई कि सारी प्रजा में रोना पड़ गया, महाराजा का शरीर छूट गया, रानियाँ विधवा हो गईं, हाहाकार मच गया और बावेला फैल गया। चौदह वर्ष तक सिंहासन खाली रहा और मातम तथा रोना-धोना जारी रहा। वन में जिस समय श्री सीता जी को वापस लाने के लिए श्री रामचन्द्र जी खड़े हो गये, तो उस समय प्रकृति की सारी शक्तियाँ उनकी सेवा करने को हाथ जोड़कर उपस्थित हो गईं। वन के जीव-जन्तु, बन्दर और रीछ सब हाजिर हो गये। पत्थर भी कहने लगे कि आज तो हम पानी में नहीं डूबेंगे, आज हम सीता जी को वापस लाने में मददगार होंगे, और अपना (पानी में डूबने का) धर्म भूल जायेंगें। पवन क्या, जल क्या, सारे भूत सेवा करने को उद्यत हो गये। कहा जाता है कि नन्हीं-नन्हीं गिलहरियाँ भी अपनी शक्ति के अनुसार मुँह में रेत के परमाणु भर-भरकर समुद्र में डालने लगीं। देवी और देवता सब-के-सब सीता जी को वापस लाने के लिए कटिबद्ध हो गये। सारी सृष्टि सेविका बन गई। बन्दर भी, जो एक चंचल जाति के थे, एक व्यूहाकार सेना के समान लड़ने और काम देने को खूब उद्यत हो गये।

प्यारे ? अध्यात्म-विद्या में सीता जी से अभिप्राय है ब्रह्म-विद्या या अद्वैत वा एकता का ज्ञान। इसका तात्पर्य क्या है ? जिस-जिस जगह

पर एकता का नियम तोड़ा जाता है, वहाँ-वहाँ पर रोना-पीटना और दाँत पीसना आ जाता है। जहाँ पर एकता के नियम को व्यवहार में लाने की तैयारी होती है, वहाँ देवी-देवता सब मदद करने को हाज़िर हो जाते हैं। देवता बलि देते हैं उसको जो एकता के कानून का बर्तने वाला होता है।

"सर्वेस्मै देवाः बलिमावहंति।"

आप पूछेंगे कि एकता क्या है। राम पुराने तरीके से अद्वैत पर नहीं बोलेगा। रूह की और आत्मा की बात एक ओर रखिये, शरीर की दृष्टि से अद्वैत देखियेगा और शरीर ही की नहीं बल्कि मन की दृष्टि से, बुद्धि की दृष्टि से अद्वैत ही अद्वैत, एकता ही एकता, फैल रही है। तत्व-वेत्ता पाँच तबकों में मनुष्यों के चोले का विभाग करते हैं, जिसे हमारे यहाँ कोष कहते हैं—(१) अन्नमय कोष, (२) प्राणमय कोष, (३) मनोमय कोष, (४) विज्ञानमय कोष, (५) आनन्दमय कोष। अर्थात् (१) यह शरीर जो अन्न से बनता है, जो अन्नाहार से बढ़ता है, और भोजन से फलता-फूलता है, वह अन्नमय कोष कहलाता है। इसको जिस्मे-कसीफ़ या स्थूल शरीर, आलमे-नासूत या जाग्रत-अवस्था व इह-लोक कहते हैं, जिससे जीवन स्थिर है। (२) श्वास जो आता जाता है, उसको लतीफ़ा-ए-हैवानी या प्राणमय कोष कहते हैं। (३) मनोमय कोष और (४) विज्ञानमय कोष, जिसका अभिप्राय है खयालों के पुंज या सोचने विचारने की शक्ति, इत्यादि। प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष; इन तीनों को जिस्मे-लतीफ़ वा सूक्ष्म शरीर या (स्वप्नावस्था) आलमे-मलकूत कहते हैं। आलमें-बेहोशी या सुषुप्ति अवस्था के कारण शरीर (जबरूत या लतीफ़ा-ए-सिर्री या जिस्मे-इल्लती) कहते हैं और जाग्रतावस्था में तरह-तरह के खयाल दौड़ते हैं, (५) आनन्दमय कोष कारण शरीर है। यह वह अवस्था है, जो बचपन और बेहोशी में होती है। हमारी आत्मा इन सब कोषों वा ढकनों से परे हैं। सब के ऊपर का ढकना अर्थात् "स्थूल शरीर"

ओवरकोट के समान है । दूसरा ढकना "सूक्ष्म शरीर" अंडरकोट है । तीसरा ढकना "कारण शरीर" मानो सब से नीचे की कमीज़ है । इस आत्मा का विवेचन किया जाय, तो सब शरीरों में एक ही आत्मा व्याप्त है । यह एक आत्मा ही परमात्मा है । यदि केवल बाह्य शरीर अर्थात् अन्नमय कोष को विचार पूर्वक देखा जाय, तो उसमें भी एकता ही एकता दिखायी देगी । हमारे स्थूल शरीर, (अन्नमय कोष) एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध रखते हैं जैसे एक समुद्र में भिन्न-भिन्न तरंगें जो नाम-रूप के नद में अथवा स्थूल तत्त्व के समुद्र में उठती हैं । वही जल जो अभी एक तरंग में था, थोड़ी देर में दूसरी और तीसरी तरंग में प्रकट होता है ।

एक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र को ही लीजिये और उसी से अपने हाथ को देखिये । आपको मालूम होगा कि हाथ, पैर या शरीर के किसी अन्य भाग से छोटे-छोटे परमाणु बाहर निकल रहे हैं । परमाणुओं में एक प्रकार की आँधी-सी आ रही है, जो आपके हाथ या दूसरे अंगों जो आपके दृष्टिगोचर हैं, छा रही है । ये परमाणु प्रत्येक के शरीर से निकल रहे हैं । यही कारण है कि जब एक मनुष्य हैजे या महामारी में या स्पर्श-जन्य रोग में ग्रसित होता है, तो समीपवालों को वह रोग लग जाता है । जो परमाणु बाहर निकल रहे हैं, वे वायु-मण्डल में फैल रहे हैं, वे दूसरे लोगों के शरीर में प्रवेश करते हैं । अगर ऐसा न होता, तो स्पर्श-जन्य रोग का फैलना असंभव होता । साइन्स ने बतलाया है कि यह गन्ध उन परमाणुओं से, जो कि बाहर निकलते हैं, प्रकट होती है । हमारे शास्त्र के शब्दों में गन्ध पृथिवी का गुण है, अर्थात् स्थूल अंगों पर निर्भर है । कोई-कोई शक्तियाँ किसी-किसी पशु में मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पायी जाती हैं । घ्राण-इन्द्रिय का सम्बन्ध सूँघने की नाड़ी से है । यह नाड़ी मनुष्य की अपेक्षा कुत्ते में अधिक विकसित रूपसे है । कुत्ता अपने स्वामी या अपने घर का पता मीलों की दूरी से केवल गन्ध के सूँघ लेने से लगा लेता है । और ऐसा होना उसी दशा में सम्भव

है जब मनुष्य के शरीर से परमाणु बाहर निकलते हों। ये परमाणु एक ही देह से दूसरे और तीसरे की देह तक आते रहते हैं। यदि एक शरीर ठीक और नीरोग है, तो उसे आरोग्य का खयाल नहीं रहता, वह न केवल अपने को रोगी बनाकर दुःख पहुँचाता है, बल्कि दूसरे मनुष्यों अपने समाज और राष्ट्र को भी खतरे में डाल रहा है, और दुःख दे रहा है। इसलिए न केवल अपने लिए बल्कि समाज के लिए अपने शरीर को नीरोग रखना उचित है।

राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

× × ×

ईश्वरानुभव के लिए आवश्यकता होती है संन्यास-भाव की अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्याग इस परिच्छिन्नात्मा को भारत-माता की महान् आत्मा से बिल्कुल अभिन्न कर दिया जाय।

× × ×

(स्वामी राम के ये चमकते हुए वाक्य "राम-हृदय" से संकलित किये गए हैं।